हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत

1. भारत के नृत्य
- शास्त्रीय नृत्य
  - भरतनाट्यम नृत्य
  - कथकली नृत्य
  - कथक नृत्य
  - मणिपुरी नृत्य
  - ओडिसी नृत्य
  - कुचिपुड़ी नृत्य
  - सत्रिया नृत्य
  - मोहिनीअट्टम नृत्य

2. भारतीय संगीत
- हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत
- कर्नाटक शास्त्रीय संगीत
- क्षेत्रीय संगीत
- संगीत उपकरण

3. भारत के रंगमंच कला
- रंगमंच कला

4. भारत के कठपुतली कला
- कठपुतली कला

मनुष्य ने युगों से अपनी आत्मा की क्रियाशीलता को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, जो कि कला के माध्यम से सांसारिकता के आगे की तलाश है ।

काव्य, चित्रकला और अन्य दृश्य कलाओं का विकास पत्थर, पत्तों तथा कागज पर हुआ है । संगीत का संबंध श्रवण से है, ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है । अत: प्राचीन समय के संगीत को आज सुन पाना संभव नहीं है ।

ऐसे सांस्कृतिक अन्तर्संबंधों की विविधता के बावजूद, हमारा संगीत तत्वत: रागात्मक रहा है । इसमें एक स्वर दूसरे स्वर के बाद आता है और प्रभाव की एक सतत इकाई का सृजन होता है, जबकि स्वर संगति में संगीतात्मक स्वर एक-दूसरे पर अध्यारोपित किए जाते हैं । हमारे शास्त्रीय संगीत ने स्वरमाधुर्य के गुण को बनाए रखा है ।

आज हम शास्त्रीय संगीत की दो पद्धतियों को पहचानते हैं: हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक । कर्नाटक संगीत कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल तक सीमित है। शेष देश के शास्त्रीय संगीत का नाम हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत है । नि:संदेह, कर्नाटक और आन्ध्र में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां हिन्दुस्तानी शास्त्रीय पद्धति का भी अभ्यास किया जाता है । कर्नाटक ने अभी हाल ही में हमें हिन्दुस्तानी शैली के कुछ अति विशिष्ट संगीतकार दिए हैं ।

सामान्य रूप से यह विश्वास किया जाता है कि तेरहवीं शताब्दी से पूर्व भारत का संगीत कुल मिलाकर एकसमान है, बाद में जो दो पद्धतियों में विभाजित हो गया था ।

वर्तमान भारतीय संगीत का प्राचीन समय से विकास हुआ है। लगभग प्रत्येक जनजाति या व्यक्ति ने इस विकास में अपने हिस्से का योगदान दिया है । अत: जिसे अब हम राग कहते है वह जनजातीय या लोक धुन के रूप में प्रारम्भ हुआ होगा ।

वेदों के गुणगान करने की रागात्मक प्रवृत्तियों से भारतीय संगीत को प्रारम्भ करना सामान्य सी बात है । प्राचीनतम संगीत जिसमें व्याकरण निहित था, वैदिक था । नि:संदेह, ऋग्वेद को प्राचीनतम कहा जाता है : लगभग 5000 वर्ष पुराना । ऋग्वेद के गान को ऋचाएं कहते हैं । यजुर्वेद भी एक धार्मिक गुणगान है लेकिन उन बीते हुए दिनों का उत्तरी और दक्षिणी भारत में वास्तविक संगीत इस प्रकार का नहीं हो सकता था । अनार्य होते थे, जिनकी अपनी कला थी, उदाहरण के लिएं, भारत के पूर्वी क्षेत्र का संथाल संगीत उनके सामने से ही होकर गुजर गया होगा । जबकि मतभेद स्पष्ट हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि लोगों के इस संगीत ने, जिसे अब हम हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत कहते हैं, की रचना में अपना योगदान दिया होगा ।

भारतीय संगीत के इतिहास में भरत का नाट्यशास्त्र एक अन्य महत्वपूर्ण सीमाचिह्न है । यह माना जाता है कि इसे दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व और दूसरी शताब्दी ईसवी सन् के बीच किसी समय लिखा गया होगा । कुछ विद्वानों को तो यह संदेह है कि क्या यह मात्र एक लेखक की रचना (ग्रंथ) है तथा यह एक सार-संग्रह रहा होगा जिसका रूपान्तर हमें उपलब्ध है । नाट्यशास्त्र एक व्यापक रचना या ग्रंथ है जो प्रमुख रूप से नाट्यकला के बारे में है लेकिन इसके कुछ अध्याय संगीत के बारे में हैं । इसमें हमें सरगम, रागात्मकता, रूपों और वाद्यों के बारे में जानकारी मिलती है । तत्कालीन समकालिक संगीत ने दो मानक सरगमों की पहचान की । इन्हें ग्राम कहते थे । शब्द ग्राम ही संभवत: किसी समूह या सम्प्रदाय उदाहरणार्थ एक गांव के विचार से लिया गया है । यही संभवत: स्वरों की ओर ले जाता है जिन्हें ग्राम कहा जा रहा है । इसका स्थूल रूप से सरगमों के रूप में अनुवाद किया जा सकता है । उस समय दो ग्राम प्रचलन में थे । इनमें से एक को षडज ग्राम और अन्य को मध्यम ग्राम कहते थे । दो के बीच का अन्तर मात्र एक स्वर पंचम में था । अधिक सटीक रूप से कहें तो हम यह कह सकते हैं कि मध्यम ग्राम में पंचम षडज ग्राम के पंचम से एक श्रुति नीचे था ।

इस प्रकार से श्रुति मापने की एक इकाई है या एक ग्राम अथवा एक सरगम के भीतर विभिन्न क्रमिक तारत्वों के बीच एक छोटा-सा अन्तर है । सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए, इनकी संख्या बाइस बताई जाती है । जहां तक व्यावहारिक गणना का संबंध है, यह मात्र इसी के लिए है । जैसा कि हम कहेंगे कि एक सप्तक में सात स्वर हैं- सा से ऊपरी सा या तारसप्तक के सा तक, लेकिन वास्तव में भारतीय संगीत में प्रयोग में लायी जाने वाली, श्रुतियों की संख्या असीम है ।

भरत के समय में ग्राम पर लौटें तो इनकी संख्या दो है, तथा प्रत्येक में सात स्वर हैं । भरत ने दो अन्य स्वरों का उल्लेख भी किया है: अन्तरा गांधार और काकली निषाद ।

अब प्रत्येक ग्राम से अनुपूरक सरगम लिए गए हैं । इन्हें मूर्छना कहते हैं । ये एक अवरोही क्रम में बजाए या गाए जाते हैं । एक सरगम में सात मूलभूत स्वर होते हैं, अत: सात मूर्छना हो सकते हैं, जैसा कि उल्लेख किया गया था, ग्राम दो होते हैं और प्रत्येक के सात मानक स्वर और दो पूरक स्वर होते हैं । चूंकि प्रत्येक स्वर एक मूर्छना दे सकता है, ऐसे असंख्य पूरक सरगम प्राप्त किए जा सकते हैं । यह दिखा पाना संभव है कि ग्राम से चौंसठ मूर्छना प्राप्त किए जा सकते हैं । इस प्रक्रिया ने स्वर संबंधी अलग-अलग पद्धतियां दी जिनके भीतर रहते हुए उन दिनों के सभी ज्ञात लय को समूहबद्ध किया जा सकता है या फिर इनका विकास किया जा सकता है । यह स्थिति कई शताब्दियों तक बनी रही । लगभग तेरहवीं शताब्दी ईसवी सन् में शारंगदेव जिनके पूर्वज कश्मीर से थे- दक्षिण भारत में बस गए और अपने अतयन्त महत्वपूर्ण संगीत रत्नाकर की रचना की । इन्होंने मूर्छना और ग्राम जैसे तकनीकी शब्दों का वर्णन भी

किया । मानक सरगमें अब भी वही थीं । जबकि भरत दो सहायक स्वरों का उल्लेख करते हैं, मध्यकालीन युग में इनकी संख्या तथा परिभाषा बहुत भिन्न थी ।

प्राय: रूपात्मक संगीत कहलाने वाली समूची योजना अब हमें काफी अपरिचित प्रतीत होती है लेकिन इस तथ्य पर कदापि संदेह नहीं किया जा सकता कि यह अत्यधिक उन्नत और वैज्ञानिक थी ।

लगभग ग्यारहवीं शताब्दी से, मध्य और पश्चिम एशिया के संगीत ने हमारी संगीत की परम्परा को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था । धीरे-धीरे इस प्रभाव की जड़ गहरी होती चली गई और कई परिवर्तन हुए । इनमें से एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था- ग्राम और मूर्छना का लुप्त होना ।

लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के आसपास, परिवर्तन की यह प्रक्रिया सुस्पष्ट हो गयी थी, ग्राम पद्धति अप्रचलित हो गई थी । मेल या थाट की संकल्पना ने इसका स्थान से लिया था । इसमें मात्र एक मानक सरगम है । सभी ज्ञात स्वर एक सामान्य स्वर 'सा' तक जाते हैं ।

लगभग अठारहवीं शताब्दी तक, यहां तक कि हिन्दुस्तानी संगीत के मानक या शुद्ध स्वर भिन्न हो गए थे । अठारहवीं शताब्दी से स्वीकृत, वर्तमान स्वर है :

सा रे ग म प ध नि

यह आधुनिक राग बिलावल का मेल आरोह है । इन सात शुद्ध स्वरों या स्वरों के अतिरिक्त, पांच रूप भेद हैं जिसमें कुल सभी बारह स्वर मिल कर सप्तक बनाते हैं ।

सा रे रे ग ग म म प ध ध नि नि

नि:संदेह, बेहतर रूपभेद है: ये श्रुतियां हैं । अत: इन्हें स्वर के बजाए 12 स्वर संबंधी क्षेत्र कहना बेहतर होगा ।

सभी ज्ञात राग इस बारह स्वरों की सरगम में समूहबद्ध हैं । सत्तरहवीं शताब्दी के एक कर्नाटक संगीत विज्ञानी वेंकटमुखी ने इन बारह स्वरों से तैयार किए गए 72 मेलों की एक पद्धति बनाई । बाद में, बीसवीं शताब्दी में पंडित भातखण्डे ने हिन्दुस्तानी रागों का वर्गीकरण करने के लिए 72 में से 10 को चुना ।

अभी तक हमने (स्वरग्राम) सरगमों की चर्चा की है: ग्राम, मूर्छना और मेल । यह स्पष्ट ही है कि इन संकल्पनाओं का विकास रागों के जन्म के पश्चात हुआ था । कोई भी लोक गायक एक ग्राम या एक मेल के बारे में नहीं सोचता । जनजातीय और लोक गीत पहले के और बिना किसी सचेत व्याकरण के आज भी विद्यमान हैं । संगीत विज्ञानी ने बाद में रागों का सरगम या स्वरग्राम में वर्गीकरण किया था ।

अब हम अपना ध्यान रागात्मक संरचनाओं पर देंगे । प्रथम संहिताबद्ध राग के लिए हमें पुन: वेदों का सहारा लेना होगा । भरत के नाट्य शास्त्र में जाति नामक रागात्मक रूपों का वर्णन मिलता है । हमें यह जानकारी नहीं है कि इन्हें किस प्रकार से गाया या बजाया जाता था । लेकिन नाट्यशास्त्र और उत्तरवर्ती टीकाओं से कुछ मुख्य बिन्दु लिए जा सकते हैं । इन जातियों में से प्रत्येक को किसी में मूर्छना या अन्य में डाला जा सकता है । ग्रह (प्रारम्भिक स्वर) न्यास (वह स्वर जिस पर एक वाक्यांश रुकता है), स्वरों के राग-निम्न तारत्व से उच्च तारत्व जैसी विशेषताएं इन्हें विशिष्ट बनाती हैं । कई विद्वानों की राय यह है कि राग की संकल्पना, जो हमारे संगीत के लिए मूलभूत है, का जन्म और विकास जाति से हुआ था । राग के बारे में मतंग का वृहद्देशी नामक एक प्रमुख ग्रंथ है । यह ग्रंथ लगभग छठी शताब्दी ईसवीं सन् का है । इस समय तक एक रागात्मक योजना के रूप में राग का विचार सुस्पष्ट और सुपरिभाषित हो गया था । मतंग भारत के दक्षिणी क्षेत्र, सटीक रूप से कर्नाटक से थे । इससे यह पता चलता है कि इस युग तक भारतीय संगीत का व्याकरण समूचे देश में लगभग एक ही था । दूसरे, उन्होंने देशी संगीत के बारे में लिखा है । इसीलिए उन्होंने अपने ग्रंथ का नाम वृहद्देशी रखा था

संगीतात्मक लय में भारत का एक विशेष योगदान ताल था । ताल समय इकाइयों का एक चक्रीय प्रबंध है । समय विभाजन की मूलभूत इकाइयां लघु, गुरु, और प्लुत हैं । वास्तव में इन्हें काव्यात्मक छन्द शास्त्र से लिया गया है । लघु में अक्षर, गुरु दो, और प्लुत तीन शामिल हैं । अपेक्षाकृत बड़ी इकाइयां भी हैं । भरत का नाट्यशास्त्र विभिन्न समय इकाइयों में से ताल का निर्माण करने, इन्हें बजाने के तरीके इत्यादि के ब्यौरे भी देता है । बाद में लेखकों ने 108 तालों की एक योजना का भी विकास किया । ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन तालों के अतिरिक्त कुछ नए तालों जैसे फिरदोस्त ने हिन्दुस्तानी संगीत में प्रवेश कर लिया है । हिन्दुस्तानी पद्धति में ताल बजाने का सबसे महमहत्वपूर्ण पहलू ठेका के भावों का विकास करना रहा है । ठेका एक तबले पर हल्के से स्पर्श द्वारा एक ताल को स्पष्ट करता है । ढोल पर प्रत्येक हल्के स्पर्श को एक नाम, एक बोल कहते हैं । उदाहरण के लिए, धा,ता,घे, आदि ।

किसी भी भाषा में हमें एक महाकाव्य, एक चतुर्दश-पदी, एक गीतिकाव्य, एक लघुकथा, इत्यादि मिल सकते हैं । इसी प्रकार से, किसी एक राग और एक ताल का आधार लेकर संगीत के विभिन्न रूपों का सृजन किया गया है । प्राचीन समय से लेकर, संगीत के रूपों को दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है । ये अनिबद्ध और निबद्ध थे । प्रथम को खुला या मुक्त रूप और द्वितीय को बन्द या सीमित कह सकते हैं ।

अनिबद्ध संगीत वह होता है जिसे अर्थपूर्ण शब्दों और ताल द्वारा प्रतिबद्ध नहीं किया जा सकता । यह एक मुक्त तात्कालिक संगीत है । इसका सर्वश्रेष्ठ रूप आलाप है ।

निबद्ध संगीत के अनेक रूप हैं । प्रबंध गीति उपलब्ध प्रारम्भिक वह रूप है जिसके बारे में कुछ जानकारी मिलती है । वास्तव में प्रबंध का प्रयोग प्राय: किसी निबद्ध गीत, संगीतात्मक कृति के लिए एक सामान्य शब्द के रूप में किया जाता है । इन बद्ध रूपों के बारे में हमारे पास बहुत कम प्रमाण हैं, सिवाए इसके कि इन्हें रागों और तालों को परिभाषित करने के लिए निर्धारित किया गया था । सभी ज्ञात प्रबंधों में से जयदेव के प्रबंध सर्वश्रेष्ठ हैं । यह कवि बारहवीं शताब्दी में बंगाल में रहता था और इन्होंने गीत गोविन्द की रचना की, जो गीतों और श्लोकों के साथ संस्कृत की एक कृति है । यह अष्टपदी है, अर्थात् प्रत्येक गीत में आठ पद होते हैं । आज ये गीत समूचे देश में फैल गए हैं और प्रत्येक क्षेत्र में इनकी अपनी शैली है । वास्तव में, गायकों ने प्रबंधों को अपनी धुनें देने की स्वतंत्रता ली है । इसे दृष्टि में रखते हुए, अष्टपदियों की मूल धुनों का निर्धारण कर पाना संभव नहीं है ।

जयदेव के गीत गोविन्द की लोकप्रियता के कई कारण हैं । नि:संदेह, पहला कारण इस कृति का मूलभूत काव्यात्मक सौन्दर्य है जो लगभग अद्वितीय है । पुन: यह संस्कृत में और अन्य भाषाओं में भी तैयार हुआ है । इन सब के अतिरिक्त, भक्ति ही सबसे महान तथा महत्वपूर्ण है

जिसने इसे जीवित रखा है । भक्ति या आराधना उतनी पुरानी है जितना कि मनुष्य । यह वास्तव में मन की वह स्थिति है जिसमें ईश्वर से विनती की जाती है ।

जबकि ईश्वरत्व भक्त के पास शिव के रूप में या एक परब्रह्म के रूप में कई रूप ले कर जाता है- श्री विष्णु के दस अवतार की कथा के रूप में भागवत ने भारतीय मानस को जीत लिया है, इसी समय गीतों तथा भवनों की रचना की गई थी, इन दोनों के उपदेश और भजन तरंगों के रूप में उत्तर भारत तक पहुंचे ताकि हमें जयदेव, चैतन्य महाप्रभु, शंकरदेव, कबीर, तुलसी, मीरां, तुकाराम, एकनाथ, नरसी और नानक जैसे सन्त कवि मिल सकें । इस भक्ति आन्दोलन ने सूफी सहित सभी धर्मों और वर्गों का परिग्रहण कर लिया । इसने हमें अभंग, कीर्तन, भजन, बाउल गीतों जैसे असंख्य भक्तिपूर्ण गीत दिए ।

ध्रुपद द्वारा निबद्ध संगीत के महान औपचारिक पहलू से परिचय होता है । विश्वास किया जाता है कि यह प्रबंध संरचना का विस्तार है । चौदहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक ध्रुपद ने लोकप्रियता के लिए एक प्रेरक शक्ति अर्जित की और पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक की अवधि में इसका विकास हुआ । इन शताब्दियों के दौरान हम इसी शैली के सर्वाधिक सम्मानित तथा सुप्रसिद्ध गायकों एवं संरक्षकों से परिचित होते हैं । मानसिंह तोमर, ग्वालियर के महाराजा ही ध्रुपद की व्यापक लोकप्रियता के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे । बैजू, बक्षु और अन्य भी थे । वृंदावन के स्वामी हरिदास न केवल एक ध्रुपदिया थे बल्कि भारत के उत्तरी क्षेत्रों में भक्ति सम्प्रदाय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभूतियों में से एक थे । परम्परानुसार, स्वामी हरिदास तानसेन के गुरु थे, जो ध्रुपद के ज्ञात सर्वोत्तम गायकों में एक और सम्राट अकबर के राजदरबार के नौ रत्नों में से एक थे ।

ध्रुपद संरचना के दो भाग है, अनिबद्ध अनुभाग और संचारी में धृपद । गायकों प्रथम मुक्त आलाप है । ध्रुपद विशिष्टत: चार भागों में गाया जाने वाला एक गीत है: स्थाई, अन्तरा, संचारी और अभोग ।

ध्रुपद की अनिवार्य विशेषता इसकी गंभीरता और लय पर बल है । ध्रुपद को गाने की चार शैलियां या वाणियां थीं । गौहर वाणी में राग या अनलंकृत रागात्मक आकृतियों का विकास है । डागर वाणी में रागात्मक वक्रताओं और शालीनताओं पर बल दिया गया है । कंधार वाणी में स्वरों के शीघ्र अलंकरण की विशेषता है । नौहर वाणी अपने व्यापक संगीतात्मक लंघन (आकस्मिक परिवर्तनों) के लिए जानी जाती थी । ये वाणियां अब अदृश्य हो गई हैं ।

ध्रुपद का आज भी अत्यधिक सम्मान किया जाता है और इसे संगीत-समारोह के मंच पर तथा अधिकांशत: उत्तर भारत के मन्दिरों में सुना जा सकता है । अब यह जनसाधारण में इतना लोकप्रिय भी नहीं रह गया है और पृष्ठभूमि में चला गया है । ध्रुपद से घनिष्ठ रूप से बीन और पखावज़ को भी आजकल अधिक संरक्षण या लोकप्रियता प्राप्त नहीं है ।

आज शास्त्रीय हिन्दुस्तानी संगीत में ख्याल को गौरव का स्थान प्राप्त है । हम वास्तव में ख्याल के आरम्भ के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते । यह एक विदेशी शब्द है और इसका अर्थ 'कल्पना' है और इसे सुनेंगे तो यह पाएंगे कि यह ध्रुपद से अधिक गीतात्मक है, लेकिन यह संदेह का विषय है कि क्या इसका संगीतात्मक रूप भी विदेशी है । कुछ विद्वानों की यह राय है कि वास्तव में इसकी जड़ें प्राचीन भारतीय रूपक आलापों में हैं । यह भी कहा जाता है कि तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो ने भी इसे प्रोत्साहन दिया । पन्द्रहवीं शताब्दी के सुलतान मोहम्मद शर्खी को ख्याल को प्रोत्साहित करने का श्रेय जाता है तथापि इसे अठारहवीं शताब्दी के नियामत खान, सदारंग और अदारंग के हाथों परिपक्वता मिली थी ।

आज ख्याल जिस रूप में गाया जाता है इसकी दो विविधताएं हैं : धीमी लय या विलम्बित ख्याल और तेज या द्रुत ख्याल । रूप में ये दोनों एक समान हैं । इनके दो अनुभाग होते हैं- स्थाई और अन्तरा । विलम्बित को धीमी लय में गाया जाता है और द्रुत को तेज लय से तकनीक की दृष्टि से प्रतिपादन ध्रुपद की तुलना में कम महत्वपूर्ण है । अधिक कोमल गमक और अलंकरण होते हैं ।

दोनों प्रकार के ख्यालों के दो अनुभाग होते हैं । स्थाई और अन्तरा स्थाई अधिकांशत: निम्न और मध्यम सप्तक तक सीमित रहती है । अन्तरा सामान्यत: मध्यम और ऊपरी सप्तकों में चलता है । स्थाई और अन्तरा मिल कर एक गीत, रचना या बन्दिश बनाते हैं जिसे हम 'चीज़' कहते हैं । एक समग्र कृति के रूप में यह राग के उस सार को उद्घाटित करता है जिसमें इसे स्थापित किया जाता है ।

ध्रुपद में वाणियों की तुलना में ख्याल में घराने होते है । ये विभिन्न व्यक्तियों या राजाओं अथवा कुलीन पुरुषों जैसे संरक्षकों द्वारा स्थापित या विकसित गायन शैलियां हैं ।

इनमें से प्राचीनतम ग्वालियर घराना है । इस शैली के प्रवर्तक एक नत्थन पीरबख्श थे जो ग्वालियर में बस गए थे और इसीलिए इसका यह नाम पड़ा । इनके हद्दू खां और हस्सू खां नाम के दो पोते थे । ये उन्नीसवीं शताब्दी में हुए थे और इस शैली के महान उस्ताद माने जाते थे । इस घराने की विशेषता खुला स्वर, शब्दों का स्पष्ट उच्चारण तथा राग, स्वर और ताल की ओर एक व्यापक ध्यान है । इस घराने के कुछ प्रमुख गायक कृष्णराव शंकर पण्डित, राजा भैया पूंछवाले आदि हैं ।

आगरा घराने के बारे में कहा जाता है कि इसकी स्थापना आगरा के खुदा बख्श ने की है । इन्होंने ग्वालियर के नत्थन पीरबख्श के साथ अध्ययन किया था लेकिन इन्होंने अपनी शैली का विकास किया । इस घराने में भी स्वर खुला और स्पष्ट है । इस घराने की विशेषता बोल तान है अर्थात् गीत के बोल या शब्दों का प्रयोग करके एक द्रुत या मध्यम लयकारी परिच्छेदी गीत को मध्यम ताल में गाया जाता है । हाल के इस घराने के सबसे प्रसिद्ध संगीतकार विलायत हुसैन खां और फैयाज़ खां रहे हैं ।

जयपुर अतरौली घराने के बारे में यह कहा जाता है कि यह सीधे ध्रुपद से निकला है । यह उन्नीसवी-बीसवीं शताब्दी के अल्लादिया खां द्वारा स्थापित है । इस घराने का ख्याल सदैव मध्यम लय में होता है । शब्दों का उच्चारण स्पष्ट रूप में और एक खुले तथा स्पष्ट स्वर में किया जाता है । इसकी विशिष्ट विशेषताएं वे परिच्छेद हैं जो प्राथमिक रूप से अलंकारों पर आधारित हैं, अर्थात् आवृत्तिमूलक रागात्मक मूलभाव-और ताल प्रभाग का एक लगभग तानमानी आग्रह । हाल के कुछ प्रमुख गायक मल्लिकार्जुन मंसूर, किशोरी अमोनकर आदि रहे हैं ।

अन्त में हम रामपुर सहसवान घराने पर आते हैं। चूंकि प्रारम्भिक गायक उत्तर प्रदेश के रामपुर के थे, इसलिए इस घराने का भी यही नाम पड़ गया । इसमें धीमे और द्रुत ख्याल सामान्यत: एक तराने के बाद गाते हैं । इस घराने की गायन शैली अति गीतात्मक है और स्वर अलंकरण से परिपूर्ण होते हैं । हाल के इस घराने के दो प्रमुख गायक निसार हुसैन खां और रशीद खां रहे हैं ।

ठुमरी और टप्पा संगीत-समारोहों में सुनी जाने वाली लोकप्रिय गायन शैलियां हैं । ठुमरी अपनी संरचना और प्रस्तुति में अति गीतात्मक है । इन गायन प्रकारों को 'अर्द्ध' या 'सुगम' शास्त्रीय नाम दिया जाता है । ठुमरी एक प्रेम गीत है और इसलिए शब्द रचना अति महत्वपूर्ण है । यह संगीतात्मक वादन से घनिष्ठ रूप से समन्वित है, और ठुमरी को गाए जाने के लिए मनोदशा को ध्यान में रखते हुए इसे खमाज, काफी, भैरवी इत्यादि जैसे रागों में प्रस्तुत किया जाता है और संगीतात्मक व्याकरण का सख्ती से पालन नहीं किया जाता । ठुमरी गायन की दो शैलियां हैं: पूरब या बनारस शैली जो काफी हद तक धीमी तथा सौम्य है और पंजाब शैली, जो अधिक जीवंत है । रसूलन देवी, सिद्धेश्वरी देवी इस शैली की प्रमुख गायिकाएं रही हैं ।

टप्पा एक ऐसा गीत होता है जिसमें स्वरों को द्रुत लय में गाया जाता है । यह एक कठिन रचना होती है और इसमें अधिक अभ्यास की आवश्यकता होती है । ध्रुपद और ख्याल शैलियों की भांति, ठुमरी और टप्पा दोनों के लिए विशेष प्रशिक्षण अपेक्षित होता है । टप्पा जिन रागों में गाया जाता है, वे उसी प्रकार के राग होते हैं जिनमें ठुमरी गाई जाती है । टप्पा गायन में पण्डित एल. के. पण्डित और मालिनी राजुरकर को विशेषज्ञता प्राप्त रही है ।

प्रकाशनाधिकार © सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
15 ए, सैक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार
दूरभाष नं0 (011) 25088638, 25309300, फैक्स 91-11-25088637, ई-मेल dir.ccrt@nic.in